श्रावकत्व का सुरक्षा कवच

- साध्वी कल्पलता

धर्म शब्द के समुच्चारण से धार्मिकों के जो चेहरे उभरते हैं वे हैं– संन्यासी तापस, महंत, साधु, श्रमण, पोप, पादरी, मौलवी .... आदि। या फिर आंखों के आगे उन लोगों की पंक्ति खड़ी हो जाती है जिन्होंने धर्म प्रचार-प्रसार, उपदेश और प्रशिक्षण का अधिकार हाथ में थाम रखा है। इस संदर्भ में जैनधर्म के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर का व्यापक दृष्टिकोण सामने आया। उन्होंने आगार और अनगार धर्म का प्रवर्तन कर चातुवर्णिक धर्मसंघ की स्थापना की। उनकी दृष्टि में साधुसाध्वी, श्रावक-श्राविका चारों धर्मसंघ के अंग हैं। दायित्व और साधना का दोनों को समान अधिकार ही नहीं दिया प्रत्युत साधु और श्रावक को अन्योन्याश्रित भूमिका पर प्रतिष्ठित किया है। यही महावीर दर्शन की अपनी निजता है। साधु की तरह श्रावक समाज की अपनी आचार संहिता है, जीवन शैली है, उपासना पद्धति है और धार्मिक कृत्यों की लम्बी श्रृंखला है। आगम ग्रंथों में इस संदर्भ में स्पष्ट विवरण उपलब्ध है, लेकिन प्राकृत भाषा में निबद्ध इन आगम ग्रन्थों का हमारे जीवन से रिश्ता टूट-सा गया है।

आयातित संस्कृति से बदलती हुई जीवन शैली और आर्थिक आपाधापी के वातावरण से श्रावक समाज प्रभावित हुआ है। परिणाम स्वरूप आगम में वर्णित श्रावक की पहचान व्यवहार में लुप्त-सी होती जा रही है। ग्रन्थों में बंद पड़ी श्रावक की चर्या, आचार विचार पद्धति और व्यवहार तालिका को युग भाषा का लिबास पहनाना आवश्यक ही नहीं, युग की मांग प्रतीत हो रही है। युग चेतना गणाधिपति गुरूदेव की दृष्टि में युग-बोध की परख है। आपने सम्प्रदाय को सुरक्षित रखते हुए जैन धर्म को जन-धर्म बनाने का प्रयत्न किया है। अणुव्रत आंदोलन उसका स्पष्ट उदाहरण है। अपने आगमिक, सैद्धांतिक और चारित्रिक पक्ष की उज्ज्वलता को सुरक्षित रखकर विकास के जिन क्षितिजों का स्पर्श किया

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, अपने आप में एक कीर्तिमान है। उस विकास प्रक्रिया की बदौलत ही तेरापंथ धर्मसंघ को आज जैन-धर्म का पर्याय माना जा रहा है।

संघ का संतुलित विकास तभी संभव है जब समग्र धर्म-तीर्थ के चरण गतिमान हो। श्रावक सामाजिक, पारिवारिक, राष्ट्रीय दायित्व को वहन करता हुआ आत्म साधना के पथ पर अग्रसर होता है। ऐसी स्थिति में उसके भीतर मुमुक्षा-भाव का दीप जलता रह सके, यह प्रेरणा के स्नेह पर निर्भर है। यह निर्विवाद तथ्य है कि लौकिक, लोकोत्तर दोनों कर्तव्यों के निर्वहन में श्रावक समाज आधारभूत घटक हैं। वे सुरक्षित रहते हैं तो परम्परा जीवित रहती है, संस्कृति सुरक्षित रहती है। स्वयं गुरूदेव ने श्रावक सम्बोध में श्रावक के महत्त्व को उदगीत करते हुए लिखा है –

श्रावक कौन ?

श्रमणोपासक श्री तीर्थंकर की कृति है।
यह विश्वमान्य अनुपम धार्मिक संस्कृति है।।

श्रावक के लिए आगमों में श्रमणोपासक शब्द भी व्यवहृत हुआ है। श्रावक श्रमणोपासक शब्द का अर्थगांभीर्य जाने बिना करणीय पथ प्रशस्त कैसे होगा ? संक्षिप्त में दी गई श्रावक-श्रमणोपासक की परिभाषा को जीने के लिए जीवनभर जागरूकता की अपेक्षा है –

श्रमणों की समुपासना श्रमणोपासक नाम।
शास्त्रों का श्रोता सजग श्रावक नाम ललाम।।

जैनेतर सम्प्रदायों में गृहस्थ के लिए ज्ञान, दर्शनचारित्र की आराधना का अनिवार्य विधान नहीं है जबकि श्रावक की भूमिका में प्रवेश करने की पहली शर्त है – प्रत्याख्यान। ज्ञान, दर्शन, चारित्र के ककहरा सीखे बिना श्रावक की जीवन पोथी मूल्यवान नहीं बन सकती। पूज्य गुरूदेव ने न्यूनतम किंतु अनिवार्य आत्मा आराधना के लिए दिशा-निर्देश देते हुए लिखा है –

न्यूनतम नवतत्त्व विद्या का सहज संज्ञान हो
स्वस्थ सम्यग दृष्टि सम्यग ज्ञान का संधान हो।
बिना प्रत्याख्यान श्रावक-भूमि में कैसे बढ़े ?
बिना अक्षर ज्ञान जीवन ग्रंथ को कैसे पढ़े ?

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मसाधना के महापथ पर बढ़ने के लिए बारह व्रतों के आगमिक विधान की जानकारी इस ग्रन्थ में बड़ी स्पष्टता से उल्लिखित है। आधुनिक सन्दर्भों के साथ उनकी संगति बौद्धिक लोगों के मस्तिष्क में नई स्फुरणा पैदा करने वाली है। व्रतों का स्वीकरण पुरूषार्थ को पंगु बनाए, यह कभी मान्य नहीं हो सकता। दूसरी ओर पदार्थों का अति उपयोग अमीरी का महारोग फैलाए, यह अज्ञानता का प्रतीक होता है। दोनों के मध्य फैला असंतुलन आज विश्व समस्या का आकार ले चुका है। पूज्य गुरूदेव ने श्रावक समाज को संतुलन की प्रक्रिया का बोध देते हुए कहा –

गरीबी गौरव गंवाना अमीरी अभिशाप है,
मांग खाना, मान खोना, मानसिक संताप है।
भले कृषि वाणिज्य श्रम से अर्थ का अर्जन करें,
पर जुगुप्सित घृणित कर्मादान का वर्जन करें।।

पापभीरूता, वैराग्य, संयम श्रावक जीवन के ऐसे भूषण हैं जो आम व्यक्ति से श्रावक की अलग पहचान बनाते हैं। जहां श्रावक स्वयं दूसरों के लिए समस्या नहीं बनता वहां समस्या को बढ़ाने में अपना योगदान भी नहीं देता। उसका लक्ष्य युग प्रवाह में बहना नहीं, सैद्धांतिक धरातल पर खड़ा रहना होता है। अनुस्त्रोत में चलना स्वाभाविक है और सुविधादायक है। उससे बचना उतना ही प्रयत्नसाध्य है। अपसंस्कृति के बढ़ते प्रचलन से श्रावक समाज भी अछूता नहीं रह सका। फलतः जीवन में ऐसे मूल्यों का प्रवेश हो गया जो जैन संस्कृति की चौखट में फिट नहीं बैठ पा रहा है। बढ़ती हुई असंयम की मनोवृत्ति, आर्थिक आसक्ति, पदार्थपरक दृष्टिकोण, सुविधावाद तथा सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास आदि तत्त्व सीधे जैन संस्कारों पर आक्रमण कर रहे हैं। जब युग पुराने मूल्यों को नकार देता है और सर्व सम्मत नए मूल्यों की प्रतिष्ठा नहीं हो तब समाज का अनीप्सित घटनाओं से बच पाना असंभव सा हो जाता है। एक ओर सामाजिक रीति रिवाज बदलते हैं, मर्यादा और वर्जनाएं मूल्यहीन बनती हैं, दूसरी ओर मानसिक स्वास्थ्य और देश का वातावरण भी विकृत बनता है। श्रावक इस दृष्टि से सोद्देश्य जागरूकता के साथ नया मोड़ लें, यह गुरूदेव को अभीष्ट है। इसलिए श्रावक को आपने जैन-जीवन-शैली का महत्त्वपूर्ण आयाम दिया और दैनिक चर्या में ऐसे व्यावहारिक बिंदुओं को सम्मिलित किया जो व्यक्ति, परिवार, समाज, प्रांत और राष्ट्र के लिए जरूरी है –

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खाद्यों की सीमा, वस्त्रों का परिसीमन
पानी बिजली का हो न अपव्यय धीमन।
यात्रा परिमाण, मौन, प्रतिदिन स्वाध्यायी,
हर रोज विसर्जन अनासक्ति वरदायी।
हो सदा संघ सेवा सविवेक सफाई
प्रतिदिवस रहे इन नियमों की परछाई।।

व्यक्तिगत रूपांतरण के साथ सामाजिक स्वस्थता गृहस्थ जीवन को समाधिमय बनाने में बहुत सहयोगी बनती है। एक हिन्दू क्रिश्चियन पद्धति से तीज त्योहार मनाए अथवा एक जैन मुस्लिम रीति-रिवाजों का अनुकरण करे तो पारिवारिक सामंजस्य ओर सौहार्द में दरारें पड़ जाती हैं। उससे रसमय जीवन नीरस बन सकता है। अन्यथा जन्म से हिन्दू और जैन कहलाने वाले कर्म से हिन्दूत्व और जैनत्व को जी सके, कम संभव है। अतः अपने मंतव्यों पर आधारित संस्कार-विधि को जीवन का अभिन्न अंग मान ले तो फिर भावी पीढ़ी पर दोषारोपण या आदेशात्मक टिप्पणी का प्रसंग ही उपस्थित नहीं होगा। अभिभावकों के लिए आवश्यक है कि वे जैन-संस्कार-विधि को सर्वमान्य विधि बनाने का गौरव दें।

सुत-जन्म विवाह भवन की नींव लगाएं,
लौकिक-लोकोत्तर जो भी पर्व मनाएं।
श्री वीर जयन्ती चरम-दिवस दीवाली,
निज वर्षगांठ या अक्षय तीज सुहाली।।

जीवन की धरती पर कंटीली झाड़ियां तब पैदा होती हैं जब व्यक्ति का लक्ष्य स्पष्ट नहीं होता तथा लक्ष्य प्राप्ति की ओर सतत पुरूषार्थ नहीं होता। प्रतिदिन के छोटे से छोटे शिष्टाचार से लेकर महापर्व तक के कार्यों के सम्पादन में जैनत्व जहां मुखर रहता है वहां श्रावक के गरिमामय आचरण से उनका श्रावकत्व बोलता है।

इतिहास सदा उन्हीं की स्मृति करता है जो सिद्धांतों के लिए मरना स्वीकार कर लेते हैं। अनुकूल और प्रतिकूल किसी भी स्थिति में अपनी आस्था पर चोट नहीं आने देते। वे देव, गुरू, धर्म के नाम की सुरक्षा ही नहीं करते उसे जी कर दिखाते हैं और ऐसे व्यक्तित्व ही आने वाली पीढ़ियों के लिए आदर्श बनते हैं। अम्बड़ संन्यासी ने सुलसा को देवी-माया

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से भ्रांत बनाने की चेष्टा की पर सुलसा अपनी आस्था की रेशम डोर से बन्धी रही। सारथि ने धारिणी के सतीत्व को चुनौति दी, उसने जीवन की बाजी लगा दी। सती सुभद्रा ने कच्चे सूत से बंधी चालनी से पानी निकाल कर चम्पानगरी के आवृत द्वार खोल सबको चमत्कृत कर दिया।

जयंती, आनन्दश्रावक, सद्दालपुत्र, सुदर्शन और शंखपोखली का नाम साधना, श्रद्धा, तत्त्वदर्शन की गहराई के लिए सुविख्यात है; तेरापंथ के अभ्युदय काल से जुड़े श्रावक समूह दृढ़ आस्था, समझ और बलिदान से हमारे प्रेरणा स्त्रोत हैं। श्रावक सम्बोध में इन सबको उल्लिखित कर पूज्य गुरूदेव ने वर्तमान को अतीत से समृद्ध करने का प्रयास किया है।

तत्त्वज्ञान को रेगिस्तान की उपमा देने वाले युवावर्ग को न्यूनतम तत्त्वज्ञान की जानकारी गुरूदेव ने जिस सहजता के साथ देने का प्रयत्न किया, पढ़कर लगता है हम किसी उद्यान में विहरण कर रहे है। तत्त्वज्ञान को अभिव्यक्ति देने वाले कुछ पद्यों की भाषा भी सरल है जिसे बच्चे भी सहजता से कंठस्थ कर सकते हैं –

जानूं जीव अजीव में पुण्य पाप की बात।
आश्रव संवर निर्जरा बंध मोक्ष विख्यात।।

इसी प्रकार सम्यगदर्शन के लक्षणों का अर्थबोध भी सहज सुगम्य बन पड़ा है जैसे –

शम – हो कषाय का सहज शमन।
संवेग – मुमुक्षा वृत्ति सबल।
निर्वेद – बढ़े भव से विराग।
अनुकंपा – करूणा भाव अमल।
आस्तिक्य – कर्म आत्मादिक में।
जन्मान्तर में विश्वास प्रबल।।

सम्यग दर्शन मोक्ष का आरक्षण देने वाला पहला घटक तत्त्व है। गुरूधारणा के साथ उसके सिद्धान्त पक्ष को जानना तथा व्यवहार में उसके अनुरूप आचरण में क्या-क्या करना होता है, इसकी स्पष्ट रूपदेखा खींचते हुए पूज्य गुरूदेव ने लिखा हैं –

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जप णमोक्कार का प्रतिदिन प्राणायामी,
क्रम चले सुखद सामायिक का अविरामी।
स्वाध्याय पुष्ट पाथेय बने जीवन का,
हो आकर्षण गरिमामय शुभ-दर्शन का।।
'परमेष्ठी वन्दना', 'अर्हत वंदन' का क्रम
संस्कार जागरण का है सफल उपक्रम
हो प्रतिक्रमण पाक्षिक श्रावक की चर्या
फिर खमतखामणा की प्रशस्त उपचर्या।।

श्रावक व्यापारी हो सकता है, डाक्टर हो सकता है, राज्य कर्मचारी हो सकता है, सेनापति हो सकता है .... कहने का तात्पर्य है कि किसी भी क्षेत्र में श्रावक का प्रवेश निषिद्ध नहीं है। यहां एक प्रश्न उपस्थित होता है कि बारह व्रतधारी श्रावक समुचित रूप से अपना दायित्व कैसे निभा पाएगा ? क्योंकि वह व्रतों की श्रृंखला में आबद्ध है। वह जानबूझ कर हिंसा कैसे कर सकेगा ? राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रश्न सामने आने पर उसका दायित्व उसे किस निर्णय पर पहुंचाएगा ? उस समय वह धर्म की रक्षा करेगा या राष्ट्र की सुरक्षा ?

गुरूदेव की दृष्टि में यह मात्र भ्रांति है अथवा तथ्य को समग्र प्रकार से न समझने की परिणति है। पहली बात श्रावक गृहत्यागी नहीं, गृहस्थ है। दूसरी बात वह हिंसा करता है पर अहिंसा मानकर नहीं।

चींटी भी क्यों अपने प्रमाद से मारे,
अनिवार्य अगर समरागंण ललकारे।
श्रावक परिवार-समाज-भूमिका में है,
दुनियादारी दायित्व हाथ थामे है।

इसके विपरीत श्रावक अनपेक्षित हिंसा तो क्या अपव्यय के प्रति भी सावधान रहता है। अपव्यय को वह हिंसा का ही अंग मानता है। संघ को, समाज को, देश को जब-जब धन की, जन की, शक्ति की अपेक्षा होती है, श्रावक कभी पीछे नहीं रहता। इतिहास की घटनाएं भी इसका स्वयंभू प्रमाण है –

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनपेक्षित एक बूंद भी घी क्यों जाए,
हो अगर अपेक्षा मन-टन स्वयं बहाए।
पाई भी व्यर्थ गमाई हुई हताशा,
हित निहित सामने तो श्रावक भामा शा.।।

श्रावक सम्बोध की संरचना कर परमपूज्य गुरूदेव ने श्रावक समाज को ऐसी ठोस सामग्री परोसी है जो आने वाली पीढ़ियों का मार्गदर्शन करती रहेगी। जिंदगी में महत्त्व न नए का होता है और न पुराने का, बस जागरूकता के साथ लक्ष्य के करीब पहुंचने की प्रक्रिया ही महत्त्वपूर्ण होती है। यह श्रावक की सम्पूर्ण जीवन-शैली है, जो उसे परिस्थिति, भाग्य या नियति के हाथों नहीं सौंपती, पुरूषार्थ का उपयोग कर निरन्तर आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है। इसमें सुरक्षित रहता है–स्व का अस्तित्व, श्रावक का व्यक्तित्व और जैन धर्म का कर्तृत्व।

Jain Education International 2010_03 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org